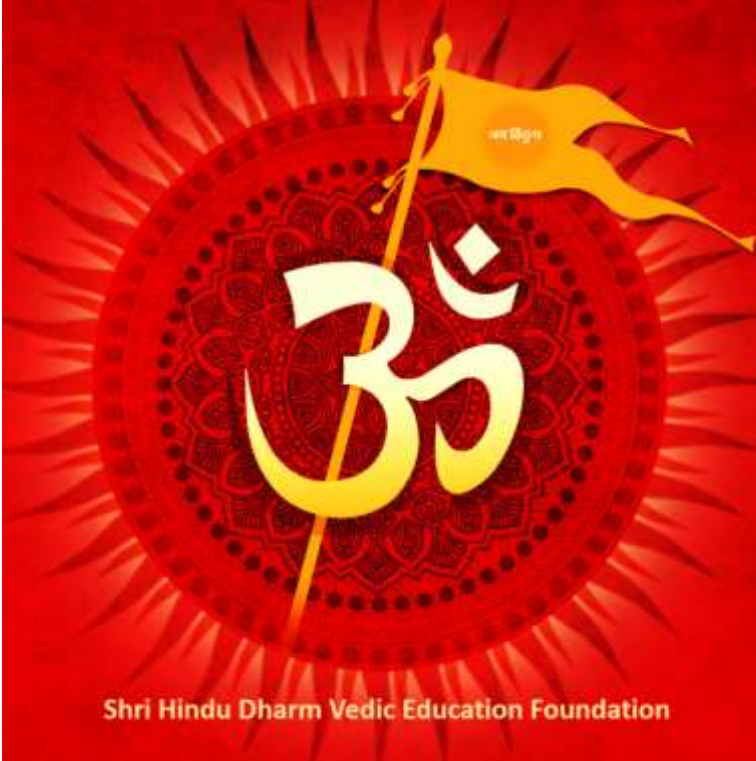




॥ ॐ ॥
॥ श्री परमात्मने नमः ॥
॥ श्री गणेशाय नमः ॥

पशुपत उपनिषद्





विषय सूची

॥अथ पाशुपतब्रह्मोपनिषत् ॥.....	3
पूर्वकाण्ड.....	5
उत्तरकाण्ड.....	15
शान्तिपाठ	28



॥ श्री हरि ॥

॥ अथ पाशुपतब्रह्मोपनिषत् ॥

॥ हरिः ॐ ॥

पाशुपतब्रह्मविद्यासंवेद्यं परमाक्षरम् ।
परमानन्दसम्पूर्णं रामचन्द्रपदं भजे ॥

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥

गुरुके यहाँ अध्ययन करने वाले शिष्य अपने गुरु, सहपाठी तथा मानवमात्र का कल्याण-चिन्तन करते हुए देवताओं से प्रार्थना करते हैं कि:

हे देवगण ! हम भगवान का आराधन करते हुए कानों से कल्याणमय वचन सुनें। नेत्रों से कल्याण ही देखें। सुदृढः अंगों एवं शरीर से भगवान की स्तुति करते हुए हमलोग; जो आयु आराध्य देव परमात्मा के काम आ सके, उसका उपभोग करें।



स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥

जिनका सुयश सभी ओर फैला हुआ है, वह इन्द्रदेव हमारे लिए कल्याण की पुष्टि करें, सम्पूर्ण विश्व का ज्ञान रखने वाले पूषा हमारे लिए कल्याण की पुष्टि करें, हमारे जीवन से अरिष्टों को मिटाने के लिए चक्र सदृश्य, शक्तिशाली गरुड़देव हमारे लिए कल्याण की पुष्टि करें तथा बुद्धि के स्वामी बृहस्पति भी हमारे लिए कल्याण की पुष्टि करें।

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

भगवान् शान्ति स्वरूप हैं अतः वह मेरे अधिभौतिक, अधिदैविक और अध्यात्मिक तीनों प्रकार के विघ्नों को सर्वथा शान्त करें ।

॥ हरिः ॐ ॥



॥ श्री हरि ॥

॥ पाशुपतब्रह्मोपनिषत् ॥

॥ पशुपत उपनिषद ॥

पूर्वकाण्ड

हरिः ॐ ॥ अथ ह वै स्वयंभूर्ब्रह्मा प्रजाः सृजानीति कामकामो जायते
कामेश्वरो वैश्रवणः । ॥१॥

एक बार स्वयंभू भगवान् ब्रह्माजी के मन में यह आकांक्षा प्रादुर्भूत हुई
कि "मैं प्रजा का सृजन करूँ"। उसी सृष्टि क्रम में कामेश्वर (रुद्र) एवं
वैश्रवण की उत्पत्ति हुई ॥१॥

वैश्रवणो ब्रह्मपुत्रो वालखिल्यः स्वयंभुवं परिपृच्छति जगतां का विद्या
का देवता जाग्रत्तुरीययोरस्य को देवो यानि तस्य वशानि कालाः
कियत्प्रमाणाः कस्याज्ञया रविचन्द्रग्रहादयो भासन्ते
कस्य महिमा गगनस्वरूप एतदहं श्रोतुमिच्छामि नान्यो जानाति
त्वं ब्रूहि ब्रह्मन् । ॥२॥

तदुपरान्त ब्रह्मपुत्र वैश्रवण वालखिल्य ऋषि ने स्वयंभू ब्रह्माजी से प्रश्न
किया- हे भगवन्! यह जगत् विद्या क्या है? जाग्रत् और तुरीयावस्था
के देवता कौन हैं? यह जगत् किसके वश में है? काल का क्या प्रमाण
है? सूर्य एवं चन्द्रादि ग्रह किसकी आज्ञा से प्रतिभासित (प्रकाशित)



होते हैं? किसकी महिमा गगन के सदृश विशाल है? हम इन सभी प्रश्नों के उत्तर आपसे सुनना चाहते हैं। आपके अतिरिक्त अन्य और कोई इन प्रश्नों का ज्ञाता नहीं है, अतः हे ब्रह्मन्! आप कृपा करके इन प्रश्नों को बताने का अनुग्रह करें ॥२॥

स्वयंभूरुवाच कृत्स्नजगतां मातृका विद्या ॥३॥

स्वयंभू (ब्रह्माजी) ने कहा-सम्पूर्ण जगत् (उत्पन्न) करने वाली मातृका विद्या (अक्षर विद्या) है ॥३॥

द्वित्रिवर्णसहिता द्विवर्णमाता त्रिवर्णसहिता । चतुर्मात्रात्मकोङ्कारो मम प्राणात्मिका देवता । ॥४॥

वह दो वर्ण (हंस) से युक्त तथा तीन वर्ण (प्रणव) वाली है। दो वर्ण वाली भी तीन वर्ण के सहित (प्रणव) ही है। चार मात्राओं से युक्त ओंकार मेरा प्राण रूप देवता है ॥४॥

अहमेव जगत्त्रयस्यैकः पतिः । ॥५॥

मैं ही एकमात्र तीनों लोकों का पति (भरण-पोषण करने वाला) हूँ ॥५॥

मम वशानि सर्वाणियुगान्यपि । ॥६॥



समस्त युग मेरे ही वश (नियंत्रण) में रहते हैं ॥६॥

अहोरात्रादयो मत्संवर्धिताः कालाः । ॥७॥

मेरे द्वारा ही अहोरात्र अर्थात् दिन-रात्रि आदि काल संवर्द्धित (प्रादुर्भूत) हुए हैं ॥७॥

मम रूपा रवेस्तेजश्चन्द्रनक्षत्रग्रहतेजांसि च । ॥८॥

रवि, चन्द्रमा , समस्त नक्षत्रों एवं ग्रह आदि में जो तेज विद्यमान है, वह मेरा ही स्वरूप है ॥८॥

गगनो मम त्रिशक्तिमायास्वरूपःनान्यो मदस्ति । ॥९॥

यह आकाश त्रिशक्ति युक्त (सत, रज, तम) मायारूप में मेरा ही स्वरूप है। मेरे सिवाय अन्य और कुछ भी नहीं है ॥९॥

तमोमायात्मको रुद्रः सात्त्विकमायात्मको विष्णु राजसमायात्मको ब्रह्मा । इन्द्रादयस्तामसराजसात्मिका न सात्त्विकः कोऽपि अघोरः सर्वसाधारणस्वरूपः । ॥१०॥

तमोगुणी मायारूप- रुद्र हैं, विष्णु सतोगुणी मायारूप हैं और ब्रह्मा रजोगुणी माया रूप हैं। इन्द्रादि देवता रजोगुण एवं तमोगुण से ओत-प्रोत हैं। इनमें से कोई भी देव सात्त्विक नहीं हैं। एक मात्र केवल अघोर (शिव) ही सर्वसाधारण सामान्य रूप वाले हैं ॥१०॥

समस्तयागानां रुद्रः पशुपतिः कर्ता ।

रुद्रो यागदेवो विष्णुरध्वर्युर्हृतिन्द्रो देवता यज्ञभुग्
मानसं ब्रह्म माहेश्वरं ब्रह्म ॥११॥

समस्त यज्ञों के कर्ता-पशुपति रुद्र भगवान् हैं, भगवान् विष्णु यज्ञ के अध्वर्यु हैं तथा इन्द्रदेव होता (मंत्र बोलने वाले) हैं। महेश्वर-ब्रह्म के मानस रूप ब्रह्म ही इस यज्ञ के भोक्ता हैं ॥११॥

मानसं हंसः सोऽहं हंस इति । तन्मययज्ञो नादानुसंधानम् ।
तन्मयविकारो जीवः । ॥१२॥

उस मानस ब्रह्म का रूप ही हंसः-सोऽहं" है । इस तन्मयता की प्राप्ति हेतु जो यज्ञ सम्पन्न किया जाता है, वही नाद-अनुसंधान है। तन्मय (उस चैतन्यमयता) का विकार ही जीव है ॥१२॥

परमात्मस्वरूपो हंसः । अन्तर्बहिश्चरति
हंसः । अन्तर्गतोऽनकाशान्तर्गतसुपर्णस्वरूपो हंसः । ॥१३॥

(वह) 'हंस' परमात्मा का स्वरूप है। (वह) हंस बाह्य एवं अन्तः में विचरण करता रहता है। अन्तः के अनवकाश वाले स्थल में यह हंस सुपर्णमय (ईश्वर-परब्रह्म) रूप में विद्यमान रहता है ॥१३॥

षण्णवतितत्त्वतन्तुवद्व्यक्तं चित्सूत्रत्रयचिन्मयलक्षणं
नवतत्त्वत्रिरावृतं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरात्मकमग्नित्रयकलोपेतं
चिद्बन्धिबन्धनम् । अद्वैतग्रन्थिः यज्ञसाधारणाङ्गं
बहिरन्तर्ज्वलनं यज्ञाङ्गलक्षणब्रह्मस्वरूपो हंसः । ॥१४-१५॥

छियानवे तत्त्व तन्तुओं के रूप में व्यक्त होने वाला, चित् के तीन सूत्रों (सत्, चित्, आनन्द) से चिन्मय लक्षणों वाला त्रिगुणित होने से नौ तत्त्वों वाला, ब्रह्मा, विष्णु और महेश रूप तीन अग्नि्यों से संयुक्त, चिद् ग्रन्थियों से बँधा हुआ, अद्वैत ग्रन्थि (ब्रह्मग्रन्थि) से युक्त यज्ञ के सामान्य अंग-रूप में बाह्य एवं अन्तःकरण को प्रकाशित करने वाला यज्ञोपवीत, ब्रह्म के लक्षणों से युक्त हंस रूप है ॥१४-१५॥

**उपवीतलक्षणसूत्रब्रह्मगा यज्ञः । ब्रह्माङ्गलक्षणयुक्तो
यज्ञसूत्रम् । तद्ब्रह्मसूत्रम् । यज्ञसूत्रसंबन्धी ब्रह्मयज्ञः ॥१६॥**

इस प्रकार यह उपवीत के लक्षणों से युक्त सूत्र (ब्रह्मसूत्र) यज्ञ-रूप है अर्थात् यह ब्रह्म का प्रतीक रूप है। ब्रह्म के लक्षणों से युक्त यह यज्ञसूत्र (यज्ञोपवीत) है, वही ब्रह्मसूत्र है। अतः यज्ञोपवीत एवं ब्रह्मयज्ञ दोनों एक दूसरे के स्वरूप ही हैं ॥१६॥

**तत्स्वरूपोऽङ्गानि मात्राणि मनो यज्ञस्य हंसो यज्ञसूत्रम् ।
प्रणवं ब्रह्मसूत्रं ब्रह्मयज्ञमयम् । प्रणवान्तर्वर्ती हंसो
ब्रह्मसूत्रम् । तदेव ब्रह्मयज्ञमयं मोक्षक्रमम् ॥१७॥**

इसके अंग मात्राएँ हैं। यह ब्रह्मसूत्र ही इस मनोयज्ञ का हंस है। ब्रह्मयज्ञ से युक्त यह प्रणव भी ब्रह्मसूत्र ही है। प्रणव का अन्तःवर्ती हंस भी ब्रह्मसूत्र है। यह ब्रह्मयज्ञ मोक्ष का साधन रूप ही है ॥१७॥

**ब्रह्मसन्ध्याक्रिया मनोयागः ।
सन्ध्याक्रिया मनोयागस्य लक्षणम् ॥१८॥**



ब्रह्मसंध्या मानसिक यज्ञ की क्रिया है, संध्या-क्रिया मानसिक यज्ञ का लक्षण है ॥१८॥

यज्ञसूत्रप्रणवब्रह्मयज्ञक्रियायुक्तो ब्राह्मणः । ब्रह्मचर्येण
हरन्ति देवाः । हंससूत्रचर्या यज्ञाः । हंसप्रणवयोरभेदः । ॥१९॥

जो मनुष्य यज्ञोपवीत, प्रणव एवं ब्रह्मयज्ञ की क्रिया से सम्पन्न हैं, वही ब्राह्मण हैं। ब्रह्मचर्य में ही देवता विचरण करते हैं। सूत्ररूप हंस एवं प्रणव दोनों एक ही हैं। इन दोनों में कोई भेद नहीं है ॥१९॥

हंसस्य प्रार्थनास्त्रिकालाः । त्रिकालस्त्रिवर्णाः । त्रेताग्र्यनुसन्धानो यागः ।
त्रेताग्न्यात्माकृतिवर्णोङ्कारहंसानुसन्धानोऽन्तर्यागः । ॥२०॥

हंस की प्रार्थना त्रिकाल अर्थात् तीन समय में सम्पन्न की जाती है। तीन काल, तीन वर्ण (अकार, उकार, मकार) होते हैं। यह यज्ञ तीन अग्रियों के अनुसंधान द्वारा सम्पन्न करने का है। तीन अग्नि रूप आत्मा की आकृति एवं वर्ण वाले ॐकार रूप हंस का अनुसंधान ही अन्तः का यज्ञ है ॥२०॥

चित्स्वरूपवत्तन्मयं तुरीयस्वरूपम् ।
अन्तरादित्ये ज्योतिःस्वरूपो हंसः । ॥२१॥



चित् स्वरूप में तन्मय (तल्लीन) होना ही तुरीयावस्था का स्वरूप है। अन्तः के आदित्य में हंस ही ज्योति रूप में अवस्थित है ॥२१॥

यज्ञाङ्गं ब्रह्मसम्पत्तिः ।
ब्रह्मप्रवृत्तौ तत्प्रणवहंससूत्रेणैव ध्यानमाचरन्ति । ॥२२॥

यज्ञाङ्ग ही ब्रह्म-सम्पत्ति है। अतः ब्रह्म-प्राप्ति के निमित्त प्रणवरूप हंस की साधना में ही ध्यान द्वारा विचरण करना चाहिए ॥२२॥

प्रोवाच पुनः स्वयंभुवं प्रतिजानीते ब्रह्मपुत्रो
ऋषिर्वालखिल्यः । हंससूत्राणि कतिसंख्यानि कियद्वा प्रमाणम् ।
॥२३॥

ब्रह्मपुत्र वालखिल्य ने पुनः स्वयंभू ब्रह्माजी से पूछा-हे भगवन् ! 'हंससूत्रों की संख्या कितनी है तथा उनके प्रमाण कितने हैं? आप तो सभी कुछ जानने में समर्थ हैं, कृपा करके बताने का अनुग्रह करें ॥२३॥

हृद्यादित्यमरीचीनां पदं षण्णवतिः ।
चित्सूत्रघ्राणयोः स्वर्निर्गता प्रणवधारा षडङ्गुलदशाशीतिः । ॥२४॥

तदनन्तर स्वयंभू ब्रह्माजी ने उत्तर दिया- 'हृदय- आदित्य की छियानवे रश्मियाँ हैं। चित्-सूत्र घ्राण से स्वरसहित निकलने वाली धारा भी छियानवे अंगुल होती है ॥२४॥



वामबाहुर्दक्षिणकठयोरन्तश्चरति
हंसः परमात्मा ब्रह्मगुह्यप्रकारो नान्यत्र विदितः । ॥२५॥

बायीं भुजा (कंधा) और दक्षिण कट्यन्त (दाहिनी ओर कटि के छोर पर) के मध्य (हृदय क्षेत्र) में परमात्मा हंस का निवास है; किन्तु इस गुह्य विषय की जानकारी किसी को नहीं हो पाती है ॥२५॥

जानन्ति तेऽमृतफलकाः । सर्वकालं हंसं प्रकाशकम् ।
प्रणवहंसान्तर्धानप्रकृतिं विना न मुक्तिः । ॥२६॥

जिन्हें अमृतत्व की प्राप्ति हो गई है, वे ही उस सर्वकाल प्रकाशमान हंस को जानते हैं। प्रणवरूपी हंस का अन्तर्धान किये बिना मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो पाती ॥२६॥

नवसूत्रान्परिचर्चितान् । तेऽपि यद्ब्रह्म चरन्ति ।
अन्तरादित्ये न ज्ञातं मनुष्याणाम् । ॥२७॥

जो मनुष्य रँगे हुए इस नौ सूत्र वाले यज्ञोपवीत को धारण करते हैं। वे भी इसकी उपासना ब्रह्ममय मान कर ही करते हैं; किन्तु इन मनुष्यों को अन्तः में स्थित आदित्यरूप ब्रह्म का ज्ञान(आत्मबोध)नहीं होता ॥२७॥

जगदादित्यो रोचत इति ज्ञात्वा ते मर्त्या विबुधास्तपन
प्रार्थनायुक्ता आचरन्ति । ॥२८॥

आदित्य जगत् को प्रकाशित करता है, यह जानकर वे बुद्धिमान् मनुष्य पवित्रता एवं ज्ञान के लिए उसकी प्रार्थना करते हैं ॥२८॥

वाजपेयः पशुहर्ता अध्वर्युरिन्द्रो देवता अहिंसा
धर्मयागः परमहंसोऽध्वर्युः परमात्मा देवता ॥२९॥

वाजपेय यज्ञ (विशिष्ट ज्ञानयज्ञ) पशुहर्ता (पशुत्वभाव-अज्ञान भाव का हरण करने वाला) है। इस यज्ञ के अध्वर्यु एवं देवता इन्द्र (परमेश्वर) हैं। यह अहिंसात्मक धर्मयज्ञ (मोक्षयज्ञ) है, इसके अध्वर्यु परमहंस तथा देवता पशुपति परमात्मा हैं ॥२९॥

पशुपतिः ब्रह्मोपनिषदो ब्रह्म । स्वाध्याययुक्ता
ब्राह्मणाश्चरन्ति । ॥३०॥

वेद एवं उपनिषद् में जिस ब्रह्म का प्रतिपादन किया गया है, उसी (परमात्मतत्त्व) की ये स्वाध्याययुक्त, ब्रह्मज्ञानी उपासना करते हैं ॥३०॥

अश्वमेधो महायज्ञकथा ।
तद्राज्ञा ब्रह्मचर्यमाचरन्ति । सर्वेषां
पूर्वोक्तब्रह्मयज्ञक्रमं मुक्तिक्रममिति ब्रह्मपुत्रः
प्रोवाच । ॥३१॥



इस महायज्ञ का ज्ञान ही अश्वमेध यज्ञ है। इसके आश्रय से ही वे (ज्ञानीजन) ब्रह्मज्ञान का आचरण करते हैं। पूर्व में वर्णित समस्त ब्रह्मयज्ञ-कर्म ही मुक्ति प्रदान करने में समर्थ हैं ॥३१॥

उदितो हंस ऋषिः । स्वयंभूस्तिरोदधे । रुद्रो ब्रह्मोपनिषदो
हंसज्योतिः पशुपतिः प्रणवस्तारकः स एवं वेद । ॥३२॥

ब्रह्मपुत्र ने पुनः कहा- 'हंस से सम्बन्धित ज्ञान का प्राकट्य हो गया है। ऐसा श्रवण कर स्वयंभू तिरोहित हो गये । इस उपनिषद् में जिस हंस ज्योति का वर्णन किया गया है, वही रुद्र है और संसार से उद्धार करने वाला प्रणव (ओंकार) ही पशुपति (ब्रह्म) है, उसे ऐसा जानो ॥३२॥

॥ इति पूर्वकाण्डः ॥

॥ पूर्वकाण्ड समाप्त ॥

उत्तरकाण्ड

हंसात्ममालिकावर्णब्रह्मकालप्रचोदिता ।
परमात्मा पुमानिति ब्रह्मसम्पत्तिकारिणी ॥ १ ॥

‘हंस’ का जप ही वर्ण ब्रह्म है, इसी से ब्रह्म-प्राप्ति की प्रेरणा प्राप्त होती है। यह ब्रह्म ही परमात्मा एवं पुरुष है। यह ब्रह्म सम्पत्ति से युक्त होता है ॥१॥

अध्यात्मब्रह्मकल्पस्याकृतिः कीदृशी कथा ।
ब्रह्मज्ञानप्रभासन्ध्याकालो गच्छति धीमताम् ।
हंसाख्यो देवमात्माख्यमात्मतत्त्वप्रजा कथम् ॥ २ ॥

जो मनुष्य अपने आत्मिक ज्ञान से ब्रह्म के समान हो गया हो, फिर उसके संदर्भ में कहने के लिए क्या शेष रह जाता है? ज्ञानी मनुष्य अपना सम्पूर्ण समय ब्रह्मचर्चा एवं उपासना में ही व्यतीत करते हैं। जब हंस एवं आत्मा में एकात्मता स्थापित हो जाती है, तो फिर प्रजा कहाँ हो सकती है? ॥२॥

अन्तःप्रणवनादाख्यो हंसः प्रत्ययबोधकः ।
अन्तर्गतप्रमागूढं ज्ञाननालं विराजितम् ॥ ३ ॥

अन्तःकरण से निःसृत होने वाले प्रणव रूपी नाद से जो हंस ज्ञात होता है, वही सम्पूर्ण ज्ञान का बोध कराने वाला है। अन्तः में अनुभवगम्य गूढ़ ज्ञान के द्वारा बाह्य जगत् के ज्ञान की प्राप्ति होती है ॥३॥

शिवशक्त्यात्मकं रूपं चिन्मयानन्दवेदितम् ।
नादबिन्दुकला त्रीणि नेत्रं विश्वविचेष्टितम् ॥ ४ ॥

शिव-शक्तिमयात्मकरूप चिन्मय आनन्द से ज्ञात होने वाला है। नाद, बिन्दु एवं कला इन तीनों नेत्रों (जागृति) से ही यह जगत् चेष्टायुक्त है ॥४॥

त्रियङ्गानि शिखा त्रीणि द्वित्राणां संख्यमाकृतिः ।
अन्तर्गूढप्रमा हंसः प्रमाणान्निर्गतं बहिः ॥ ५ ॥

तीन अंग, तीन शिखा एवं दो या तीन मात्राओं में उसकी संख्या (आकृति) ज्ञात होती है। जब इस प्रकार से वह अन्तर्धान हो जाता है, तब इस गूढ़ आत्मा का ज्ञान बाह्य जगत् में भी प्रमाण के रूप में प्रकट होता है ॥५॥

ब्रह्मसूत्रपदं ज्ञेयं ब्राह्मं विध्युक्तलक्षणम् ।
हंसार्कप्रणवध्यानमित्युक्तो ज्ञानसागरे ॥ ६ ॥

जगत् के सूत्ररूप ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करके स्वयमेव ब्रह्म के लक्षणों से युक्त होना चाहिए तथा निरन्तर हंस रूपी सूर्य का प्रणव सहित ध्यान करते रहना चाहिए, यही ज्ञानीजनों का उपदेश है ॥६॥

एतद्विज्ञानमत्रेण ज्ञानसागरपारगः ।
स्वतः शिवः पशुपतिः साक्षी सर्वस्य सर्वदा ॥ ७ ॥

इस प्रकार से विशेष ज्ञान-प्राप्ति होने के पश्चात् ही ज्ञान-सागर के पार पहुँचा जा सकता है। स्वयं भगवान् शिवरूप पशुपति-ब्रह्म ही सर्वदा (इसके) साक्ष्य रूप हैं ॥७॥

सर्वेषां तु मनस्तेन प्रेरितं नियमेन तु ।
विषये गच्छति प्राणश्चेष्टते वाग्वदत्यपि ॥ ८ ॥

यही भगवान् शिव सभी लोगों के मन को प्रेरित एवं संतुलित-नियमित करने वाले हैं, जिसके प्रभाव से मन विषयों में गतिशील होता है। प्राण चेष्टा-रत रहते हैं तथा वाणी उच्चारण का कार्य करती है ॥८॥

चक्षुः पश्यति रूपाणि श्रोत्रं सर्वं शृणोत्यपि ।
अन्यानि कानि सर्वाणि तेनैव प्रेरितानि तु ॥ ९ ॥

स्वं स्वं विषयमुद्दिश्य प्रवर्तन्ते निरन्तरम् ।
प्रवर्तकत्वं चाप्यस्य मायया न स्वभावतः ॥ १० ॥

उन्हीं भगवान् की प्रेरणा से चक्षु रूपों-दृश्यों को देखते हैं, कान श्रवण करते हैं तथा अन्य समस्त इन्द्रियाँ भी उन्हीं से प्रेरित हो रही हैं। वे निरन्तर अपने-अपने विषयों के उद्देश्य में प्रवृत्त होती रहती हैं। यह



विषयों में प्रवृत्त होना ही मायारूप है, यह स्वभाववश नहीं होता, माया द्वारा ही होता है ॥९-१०॥

श्रोत्रमात्मनि चाध्यस्तं स्वयं पशुपतिः पुमान् ।
अनुप्रविश्य श्रोत्रस्य ददाति श्रोत्रतां शिवः ॥ ११ ॥

श्रोत्र आत्मा के आश्रित हैं तथा स्वयं पशुपति ब्रह्म श्रोत्र में प्रविष्ट होकर उन शिव को श्रवण शक्ति देते हैं ॥११॥

मनः स्वात्मनि चाध्यस्तं प्रविश्य परमेश्वरः ।
मनस्त्वं तस्य सत्त्वस्थो ददाति नियमेन तु ॥ १२ ॥

मन भी अपनी अन्तरात्मा में अभ्यस्त है एवं परब्रह्म परमेश्वर उसमें प्रविष्ट होकर, उस सत्त्व में स्थित होते हुए उसे नियम में रखते हैं और मनस्विता प्रदान करते हैं ॥१२॥

स एव विदितादन्यस्तथैवाविदितादपि ।
अन्येषामिन्द्रियाणां तु कल्पितानामपीश्वरः ॥ १३ ॥

तत्तद्रूपमनु प्राप्य ददाति नियमेन तु ।
ततश्चक्षुश्च वाक्चैव मनश्चान्यानि खानि च ॥ १४ ॥

न गच्छन्ति स्वयंज्योतिःस्वभावे परमात्मनि ।



अकर्तृविषयप्रत्यक्प्रकाशं स्वात्मनैव तु ॥ १५ ॥

विना तर्कप्रमाणाभ्यां ब्रह्म यो वेद वेद सः ।
प्रत्यगात्मा परंज्योतिर्माया सा तु महत्तमः ॥ १६ ॥

ऐसे ही वे परम ईश्वर समस्त इन्द्रियों को सचेष्ट करते हैं, परन्तु लोग उन ब्रह्म को जैसा बताते हैं अथवा कल्पना करते हैं, उससे वे महेश्वर सर्वथा भिन्न हैं । परब्रह्म परमेश्वर ही इन समस्त इन्द्रियों को अपने अनुकूल रूप प्रदान करते हैं एवं उनका नियमन भी करते हैं। इस कारण ये चक्षु, मन, वाणी आदि समस्त इन्द्रियाँ परमपिता परमात्मा के स्वयं प्रकाशतत्त्व (रूप) को प्राप्त नहीं हो सकती अर्थात् उनके ज्ञानरूपी प्रकाश को जानने में समर्थ नहीं हो सकतीं । जो मनुष्य ऐसा जानता है कि परमात्मा अन्तः के विषयों से भिन्न (अलग) है, वह तर्क एवं प्रमाण के बिना ही उसे अपनी अन्तरात्मा द्वारा जानने का निरन्तर प्रयास करे, उसे यथार्थ रूप में परमात्म तत्त्व का ज्ञान प्राप्त हो सकता है। यह आत्मा ही परम प्रकाश स्वरूप है, जबकि वह माया महा अन्धकाररूप है ॥१३-१६ ॥

तथा सति कथं मायासंभवः प्रत्यगात्मनि ।
तस्मात्तर्कप्रमाणाभ्यां स्वानुभूत्या च चिद्घने ॥ १७ ॥

स्वप्रकाशैकसंसिद्धे नास्ति माया परात्मनि ।
व्यावहारिकदृष्ट्येयं विद्याविद्या न चान्यथा ॥ १८ ॥

इसलिए प्रत्यगात्मा एवं माया की एकता किसी भी तरह से सम्भव नहीं है। उसके तर्कों, प्रमाणों एवं अनुभव से ज्ञात होता है कि



चैतन्यमय स्वयं प्रकाशस्वरूप परमात्मा में माया नहीं है। विद्या एवं अविद्या के विषय व्यावहारिक हैं, परमात्मा से उनका कोई भी सम्बन्ध नहीं है ॥१७-१८॥

तत्त्वदृष्ट्या तु नास्त्येव तत्त्वमेवास्ति केवलम् ।
व्यावहारिक दृष्टिस्तु प्रकाशाव्यभिचारितः ॥ १९ ॥

प्रकाश एव सततं तस्मादद्वैत एव हि ।
अद्वैतमिति चोक्तिश्च प्रकाशाव्यभिचारतः ॥ २० ॥

तात्त्विक दृष्टि से यह सभी कुछ मिथ्या ही है। केवल एक तत्त्व ही वास्तविक सत्य है। व्यावहारिक-दृष्टि से जो भी कुछ जान पड़ता है, वह भी वैसे ही आभासित होता है। प्रकाश ही निरन्तर विद्यमान है। इस प्रकार यह अद्वैत ही है, अद्वैत ही इस प्रकार के प्रकाश के अभेद से कहा जाता है ॥१९-२०॥

प्रकाश एव सततं तस्मान्मौनं हि युज्यते ।
अयमर्थो महान्यस्य स्वयमेव प्रकाशितः ॥ २१ ॥

न स जीवो न च ब्रह्मा न चान्यदपि किञ्चन ।
न तस्य वर्णा विद्यन्ते नाश्रमाश्च तथैव च ॥ २२ ॥

न तस्य धर्मोऽधर्मश्च न निषेधो विधिर्न च ।
यदा ब्रह्मात्मकं सर्वं विभाति तत एव तु ॥ २३ ॥

तदा दुःखादिभेदोऽयमाभासोऽपि न भासते ।
जगज्जीवादिरूपेण पश्यन्नपि परात्मवित् ॥ २४ ॥

न तत्पश्यति चिद्रूपं ब्रह्मवस्त्वेव पश्यति ।
धर्मधर्मित्ववार्ता च भेदे सति हि भिद्यते ॥ २५ ॥

इस प्रकार से सर्वत्र सतत एक प्रकाश स्थित है। इसके सन्दर्भ में और अधिक कुछ कहने की अपेक्षा मौन ही उत्तम है। जिस मनुष्य को यह महान् ज्ञान स्वयमेव ज्ञात हो गया है, वह न जीव रूप है, न ब्रह्म है और न ही कुछ और है। उसका न कोई 'वर्ण' है तथा वह आश्रम भी नहीं है। वह धर्म भी नहीं है और अधर्म भी नहीं है, निषेध एवं विधि भी वह नहीं है। जब उसको सब कुछ ब्रह्ममय ही दृष्टिगोचर होता है, तब उसे इस दुःखादि भेद का आभास बिल्कुल नहीं जान पड़ता। परब्रह्म परमात्मा का इस प्रकार से ज्ञान रखने वाला इस जीवादि स्वरूप वाले विश्व को देखते हुए भी नहीं देखता। वह एकमात्र चिद्रूप ब्रह्म का ही निरन्तर दर्शन करता है। धर्म एवं धर्मों के विषय-भेद के रहते हुए भिन्न ही प्रतीत होते हैं ॥२१-२५॥

भेदाभेदस्तथा भेदाभेदः साक्षात्परात्मनः ।
नास्ति स्वात्मातिरेकेण स्वयमेवास्ति सर्वदा ॥ २६ ॥

एक मात्र वह परमात्म चेतना ही है, जो हमेशा से अपने वर्तमान स्वरूप में है और दूसरे अन्य सभी भेद आदि एवं समस्त भेद-अभेद उस (परमात्मा) में ही संव्याप्त हैं ॥२६॥

ब्रह्मैव विद्यते साक्षाद्ब्रह्मस्तुतोऽवस्तुतोऽपि च ।
तथैव ब्रह्मविज्ञानी किं गृह्णाति जहाति किम् ॥ २७ ॥

वस्तु अथवा अवस्तु जो कुछ भी विद्यमान है, वह सभी कुछ साक्षात् परब्रह्ममय ही है। ऐसी दशा में ब्रह्मज्ञान रखने वाला किसी को स्वीकार अथवा परित्याग कैसे कर सकता है? ॥२७॥

अधिष्ठानमनौपम्यमवाङ्मनसगोचरम् ।
यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रं रूपवर्जितम् ॥ २८ ॥

अचक्षुःश्रोत्रमत्यर्थं तदपाणिपदं तथा ।
नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूखं च तदव्ययम् ॥ २९ ॥

ब्रह्मैवेदममृतं तत्पुरस्ताद् ब्रह्मानन्दं परमं चैव पश्चात् ।
ब्रह्मानन्दं परमं दक्षिणे च ब्रह्मानन्दं परमं चोत्तरे च ॥ ३० ॥

जो परब्रह्म उपमा-विहीन, वाणी एवं मन से अगोचर, दृष्टि से परिलक्षित न होने वाला, ग्रहण न कर सकने योग्य, गोत्र-रहित, रूप-विहीन है; जो (ब्रह्म) आँख, कान, हाथ-पैर आदि से रहित, नित्य, विभु, सर्वगत, सूक्ष्मातिसूक्ष्म, अव्यय एवं मृत्यु से रहित है, सबका अधिष्ठाता अथवा आधार रूप है; वह (ब्रह्म उस साधक के) आगे-पीछे, उत्तर एवं दक्षिण सर्वत्र सर्वश्रेष्ठ वेदामृत (वेदज्ञानामृत) स्वरूप ब्रह्मानन्द रूप में विद्यमान है और वह परब्रह्म आनन्दमय रूप में दायें-बायें भी प्रतिष्ठित है ॥२८-३०॥

स्वात्मन्येव स्वयं सर्वं सदा पश्यति निर्भयः ।
तदा मुक्तो न मुक्तश्च बद्धस्यैव विमुक्तता ॥ ३१ ॥

इस प्रकार वह श्रेष्ठ साधक सभी को निरन्तर अपनी अन्तरात्मा में निर्भय होकर देखता रहता है। ऐसा भाव रखने वाला साधक ज्ञानी ही नहीं, वरन् अज्ञानी होने पर भी मुक्ति प्राप्त कर लेता है ॥३१॥

एवंरूपा परा विद्या सत्येन तपसापि च ।
ब्रह्मचर्यादिभिर्धर्मैर्लभ्या वेदान्तवर्त्मना ॥ ३२ ॥

इस प्रकार परा विद्या, सत्य, तप और ब्रह्मचर्यादि धर्म की प्राप्ति भी वेदान्त मार्ग के द्वारा ही होती है ॥३२॥

स्वशरीरे स्वयंज्योतिःस्वरूपं पारमार्थिकम् ।
क्षीणदोषः प्रपश्यन्ति नेतरे माययावृताः ॥ ३३ ॥

जिनका अन्तःकरण पूर्णरूपेण पवित्र है, समस्त दोषादि विकार क्षीण हो गये हैं, वे ही श्रेष्ठ योगी साधक स्वयं प्रकाशस्वरूप परब्रह्म परमात्मा का दर्शन कर सकते हैं, माया द्वारा आवृत लोग उन परमप्रभु का दर्शन प्राप्त नहीं कर सकते ॥३३॥

एवं स्वरूपविज्ञानं यस्य कस्यास्ति योगिनः ।
कुत्रचिद्गमनं नास्ति तस्य सम्पूर्णरूपिणः ॥ ३४ ॥

जो योगी साधक अपने स्वरूप को इस तरह से समझ लेता है, वह उस पूर्णता को प्राप्त करके पुनः आवागमन के चक्कर में नहीं पड़ता ॥३४॥

आकाशमेकं सम्पूर्णं कुत्रचिन्न हि गच्छति ।
तद्वद्ब्रह्मात्मविच्छ्रेष्ठः कुत्रचिन्नैव गच्छति ॥ ३५ ॥

जिस प्रकार एकमात्र आकाश सर्वत्र उपस्थित रहता है। वह इधर-उधर कहीं गमनागमन नहीं करता, उसी प्रकार जिस योगी साधक ने अपने को ब्रह्ममय जान लिया है, वह कहीं आ-जा नहीं सकता ॥३५॥

अभक्ष्यस्य निवृत्त्या तु विशुद्धं हृदयं भवेत् ।
आहारशुद्धौ चित्तस्य विशुद्धिर्भवति स्वतः ॥ ३६ ॥

आहार के अन्तर्गत अभक्ष्य-भक्षण का परित्याग कर देने पर चित्त पूर्णतया पवित्र हो जाता है। जब आहार की शुद्धि हो जाती है, तब चित्त की शुद्धि स्वयं ही हो जाती है ॥३६॥

चित्तशुद्धौ क्रमाज्ज्ञानं त्रुट्यन्ति ग्रन्थयः स्फुटम् ।
अभक्ष्यं ब्रह्मविज्ञानविहीनस्यैव देहिनः ॥ ३७ ॥

जब चित्त पूरी तरह से शुद्ध हो जाता है, तब क्रमशः ज्ञान प्रवर्द्धित होता चला जाता है तथा अज्ञान की समस्त ग्रन्थियाँ विनष्ट हो जाती हैं, लेकिन भक्ष्याभक्ष्य का विचार मात्र उसके लिए आवश्यक है, जिसे ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति अभी नहीं हुई है ॥३७॥

न सम्यग्ज्ञानिनस्तद्वत्स्वरूपं सकलं खलु ।
अहमन्त्रं सदात्राद इति हि ब्रह्मवेदनम् ॥ ३८ ॥

इसका कारण यह है कि सम्यक् रूप से ज्ञानी का स्वरूप अज्ञानी के सदृश भेद-ज्ञानयुक्त नहीं होती। ज्ञानी यह समझता है कि भक्षण करने वाला मैं 'ब्रह्म' हूँ तथा अन्न भी मैं ही हूँ ॥३८॥

ब्रह्मविद्वसति ज्ञानात्सर्वं ब्रह्मात्मनैव तु ।
ब्रह्मक्षत्रादिकं सर्वं यस्य स्यादोदनं सदा ॥ ३९ ॥

जो साधक योगी-ब्रह्मज्ञानी होता है, वह प्राणि-मात्र को ब्रह्म के रूप में देखता है। इस कारण ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि की भावना भी उसके लिए भोज्य (ग्राह्य-पाच्य) है ॥३९॥

यस्योपसेचनं मृत्युस्तं ज्ञानी तादृशः खलु ।
ब्रह्मस्वरूपविज्ञानाज्जगद्भोज्यं भवेत्खलु ॥ ४० ॥

मृत्यु ही जिस ब्रह्म का अन्न (भोज्य पदार्थ) है, ऐसे ब्रह्म को जानने वाला साधक भी तदनु रूप ही हो जाता है तथा यह सम्पूर्ण जगत् ही उसके लिए भोज्य (ग्राह्य) हो जाता है ॥४०॥

जगदात्मतया भाति यदा भोज्यं भवेत्तदा ।
ब्रह्मस्वात्मतया नित्यं भक्षितं सकलं तदा ॥ ४१ ॥

जब इस विश्व की, आत्मा के रूप में अनुभूति की जाती है, तो वह भोज्य रूप हो जाता है तथा आत्मा रूप से अविनाशी ब्रह्म सतत उसका भक्षण करता रहता है ॥४१॥

यदाभासेन रूपेण जगद्भोज्यं भवेत तत् ।
मानतः स्वात्मना भातं भक्षितं भवति ध्रुवम् ॥ ४२ ॥

जिसका आभास हो जाने से यह विश्व भोज्य पदार्थरूप हो जाता है तथा वह जब आत्मस्वरूप ज्ञात हो जाता है, तो निश्चय ही वह ब्रह्म के द्वारा भक्षित होता है ॥४२॥

स्वस्वरूपं स्वयं भुङ्क्ते नास्ति भोज्यं पृथक् स्वतः ।
अस्ति चेदस्तितारूपं ब्रह्मैवास्तित्वलक्षणम् ॥ ४३ ॥

इस तरह से ब्रह्म स्वयं ही अपने स्वरूप का भक्षण करता है, इसका कारण यह है कि उससे (ब्रह्म से) भोज्य पदार्थ अलग ही नहीं है। जो अस्तित्ता का रूप है, वही ब्रह्म के अस्तित्व का लक्षण-रूप है ॥४३॥

अस्तित्तालक्षणा सत्ता सत्ता ब्रह्म न चापरा ।
नास्ति सत्तातिरेकेण नास्ति माया च वस्तुतः ॥ ४४ ॥

सत्ता का लक्षण ही अस्तित्व माना जाता है तथा ब्रह्म से सत्ता पृथक् नहीं होती। ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कोई सत्ता है ही नहीं और न माया कोई वास्तविक वस्तु ही होती है ॥४४॥



योगिनामात्मनिष्ठानां माया स्वात्मनि कल्पिता ।
साक्षिरूपतया भाति ब्रह्मज्ञानेन बाधिता ॥ ४५ ॥

योगी साधकगण माया की कल्पना अपनी अन्तरात्मा से ही करते हैं। वह ब्रह्मज्ञान से बाधित होती हुई उन (साधक गणों) को साक्षीरूप में प्रतिभासित होती है ॥४५॥

ब्रह्मविज्ञानसम्पन्नः प्रतीतमखिलं जगत् ।
पश्यन्नपि सदा नैव पश्यति स्वात्मनः पृथक् ॥ ४६ ॥

इत्युपनिषत् ॥

इस प्रकार से जिस ज्ञानी साधक को ब्रह्म के ज्ञान-विज्ञान की सम्पन्नता की अनुभूति हो गई है, वह चाहे इस सम्पूर्ण विश्व का अपने समक्ष दर्शन करता रहे; किन्तु वह उसे अपने से अलग कभी नहीं मानता। ऐसी ही यह उपनिषद् है ॥४६॥

॥ इति उत्तरकाण्डः ॥

॥ उत्तरकाण्ड समाप्त ॥

॥ हरि ॐ ॥



शान्तिपाठ

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥

गुरुके यहाँ अध्ययन करने वाले शिष्य अपने गुरु, सहपाठी तथा मानवमात्र का कल्याण-चिन्तन करते हुए देवताओं से प्रार्थना करते हैं कि:

हे देवगण ! हम भगवान का आराधन करते हुए कानों से कल्याणमय वचन सुनें। नेत्रों से कल्याण ही देखें। सुदृढः अंगों एवं शरीर से भगवान की स्तुति करते हुए हमलोग; जो आयु आराध्य देव परमात्मा के काम आ सके, उसका उपभोग करें।

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥

जिनका सुयश सभी ओर फैला हुआ है, वह इन्द्रदेव हमारे लिए कल्याण की पुष्टि करें, सम्पूर्ण विश्व का ज्ञान रखने वाले पूषा हमारे लिए कल्याण की पुष्टि करें, हमारे जीवन से अरिष्टों को मिटाने के लिए चक्र सदृश्य, शक्तिशाली गरुड़देव हमारे लिए कल्याण की पुष्टि करें तथा बुद्धि के स्वामी बृहस्पति भी हमारे लिए कल्याण की पुष्टि करें।



॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

भगवान् शांति स्वरूप हैं अतः वह मेरे अधिभौतिक, अधिदैविक और अध्यात्मिक तीनों प्रकार के विघ्नों को सर्वथा शान्त करें ।

॥ इति पाशुपतब्रह्मोपनिषत् ॥

॥ पशुपत उपनिषद समाप्त ॥



संकलनकर्ता:

श्री मनीष त्यागी

संस्थापक एवं अध्यक्ष
श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

www.shdvef.com

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय: ॥